खाद्य सुरक्षा : उपलब्धता, खरीद क्षमता और समाहित संबंधी मामला

प्रो. एम.एस. स्वामीनाथन – कृषि वैज्ञानिक व सांसद

खाद्य सुरक्षा की समस्या एक मिश्रित समस्या है जो खाद्य और गैर–खाद्य पहलुओं का मिश्रण है। इसके तीन मूल घटक हैं – बाजार में खाद्य की उपलब्धता (उत्पादन), खाद्य तक पहुंच (इसे खरीदने की क्षमता) और शरीर में खाद्य का समाहित होना, जो गैर–खाद्य पहलुओं पर निर्भर करता है जैसे सफाई, पेय जल, प्राथमिक स्वास्थ्य सुरक्षा, पर्यावरण हाइजिन, प्रतिरक्षण और इसी प्रकार के अन्य पहलू। विश्व खाद्य कार्यक्रम द्वारा प्रस्तुत फूड इनसिक्योरिटी एटलस ऑफ इंडिया में दर्शाया गया है कि कई राज्यों में पर्याप्त सामाजिक सुरक्षा प्रणाली है, जैसे तमिलनाडु जहां पर सार्वजनिक वितरण प्रणाली विद्यमान है और लगभग 18 मिलियन परिवार मुफ्त में चावल प्राप्त करते हैं। फिर भी वहां पर बाल–कुपोषण के मामले हैं। इसका मुख्य कारण खाद्य सुरक्षा की अन्य आवश्यकताओं को गैर खाद्य पहलुओं जैसे तत्वों पर ध्यान नहीं दिया गया है।

खाद्य सुरक्षा के प्रथम घटक पर विचारः भारत में खाद्य की उपलब्धता। इस वर्ष यह बहुत अच्छी है क्योंकि मौसम सकारात्मक रहा है। इस बार केवल पंजाब ने ही वर्ष 1947 में उत्पादित देश के कुल गेहूँ से चार गुना अधिक गेहूँ का उत्पादन किया है। इस राज्य ने 24 मि.टन. का उत्पादन किया जिसमें से 13 मि.टन. सार्वजनिक वितरण प्रणाली में दिया गया। हरियाणा और मध्य–प्रदेश ने भी गेहूँ और चावल का बहुत अच्छा उत्पादन किया और 100 मि.टन. से अधिक का उत्पादन किया। इस प्रकार खाद्य उपलब्धता समस्या नहीं है।

भूमि की बचत करके कृषि से बहुत अधिक प्राप्त किया गया है जिसे हरित–क्रांति भी कहते हैं जिसका अर्थ है कि सीमित क्षेत्र में उत्पादकता बढ़ाना। उदाहरण के लिए इस वर्ष 90 मि.टन. गेहू. गेहूँ का उत्पादन हुआ, वर्ष 1965–66 की औसत फसल के अनुसार इसके लिए 90 मि.हेक्टेयर भूमि की आवश्यकता होती (जो 800 कि.ग्रा.प्रति हेक्टेयर थी) किंतु यह मात्रा 30 मि.हेक्टेयर से भी कम क्षेत्र में उत्पादित की गई।

भारत में कृषि कष्टदायी भी है क्योंकि सिकुड़ रही है, ऋणग्रस्तता बढ़ रही है, युवा और नारियों की रूचि कृषि में कम हो रही है। उत्पादन और फसलोपरांत तकनीक में भी गंभीर असमानता है, यह न केवल अनाज के लिए बल्कि फल एवं सब्जियों पर भी लागू होता है।

भारतीय कृषि जो 60 प्रतिशत वर्षा आधारित है, की समस्या के समाधान की भी आवश्यकता है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में दालों का उत्पादन तेजी से बढ़ाना होगा यदि लाभकारी समर्थन मूल्य रणनीति अपनाई जाती है जैसी गेहूँ और चावल के लिए है। यद्यपि अच्छा मूल्य देना ही पर्याप्त नहीं होगा। सरकार को चाहिए कि दालों के उत्पादन में सुधार हेतु उपाय करें। पंजाब के बहुत से किसानों की शिकायत है कि अनाज की तरह ऐसा नहीं हो रहा है। इस प्रकार महंगी फसलों के उत्पादन से किसान प्रसन्न हों यह आवश्यक नहीं।

भारत में तकनीकी विकास हेतु पर्याप्त अवसर हैं।

खाद्य सुरक्षा का दूसरा पहलू आहार तक आर्थिक पहुंच है, जिसके लिए खाद्य सुरक्षा बिल में संबोधित किया गया हैः खाद्य सुरक्षा बिल का विधिक पहलू खाद्य उत्पादन का समाधान नहीं कर सकता बल्कि केवल पात्रता का कर सकता है, कि एक व्यक्ति की कितनी पात्रता है। पहली बार फूड बास्केट की अवधारणा को बिल में स्थान दिया गया है, ताकि पोषक अनाज को भी गेहूँ और चावल के अतिरिक्त शामिल किया जाए। पहले जिसे मोटे अनाज के रूप में जाना जाता

था, रागी, ज्वार और बाजरा स्वस्थ डाइट के महत्वपूर्ण घटक हैं। चीन में वास्तव में, 500 मि.टन. का कुल उत्पादन एक तिहाई अवधारणा पर निर्भर हैः एक तिहाई उत्पाद गेहूँ का, एक तिहाई उत्पादन चावल का और शेष मोटा अनाज है। ये अनाज पशुओं के लिए भी महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए, कुक्कुट पालन को मक्का की आवश्यकता होती है और यह व्यवसाय तेजी से बढ़ रहा है।

प्रधानमंत्री की पोषक सलाहकार परिषद् ने 200 उच्च दाब वाले जिलों की पहचान की है जो प्रमुख रूप से जनजाति क्षेत्र या नक्सल प्रभावित जिले हैं। इन जिलों में कुपोषण की समस्या का सामना करने के लिए चालू बजट में विशेष प्रयास किए जाएंगे। किंतु यह प्रशंसा करनी होगी की इस देश के इतिहास में पहली बार भारत घर में उत्पादित आहार से खाद्य विधान का अधिकार लाने की सोच रहा है जो वर्ष 1965–66 के 'शिप टु माउथ' के समय से बड़ी राहत है जब देश के लोगों का पेट भरने के लिए अनाज आयात करना पड़ता था।

खाद्य सरुक्षा का तीसरा पहलू शरीर में आहार को समाहित करना है। शरीर को न केवल उर्जा, प्रोटीन और वसा की आवश्यकता होती है बल्कि बहुत से माइक्रोन्यूट्रिएंट्स भी चाहिए जैसे विटामिन ए और बी 12, फोलिक एसिड, जिंक, आयरन और आयोडिन। बहुत से लोग इन पोषक तत्वों की कमी से प्रभावित हैं जिसे 'हिडन हंगर' (छिपी हुई भूख) के वर्ग में रखा जा सकता है। इस बिल में इस समस्या पर प्रकाश नहीं डाला गया।

इस बिल में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत कई सुधार किए गए हैं जिनमें उच्च वरीयता या कम वरीयता की जनसंख्या निर्धारित की गई है जो लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत वर्ष 1997 में आरंभ हुई। इस प्रणाली में मुख्यतः लीकेज़ और भ्रष्टाचार को रोकना था किंतु वह खाद्य सुरक्षा बिल का एकमात्र उद्देश्य नहीं होना चाहिए। तमिलनाडु और केरल जैसे सार्वजनिक वितरण प्रणाली अपनाने वाले राज्यों को इस क्षेत्र का बहुत अच्छा अनुभव है और दृढ़ता से यह सिफारिश की जाती है कि कम से कम 200 उच्च दाब वाले जिलों में सार्वभौमिक सार्वजनिक वितरण प्रणाली होनी चाहिए चाहे पूरे देश के लिए यह संभव न हो, ताकि बिल के प्रावधानों की सफलता का वास्तविक आकलन हो सके।

धान और निर्धनता को साथ–साथ होने की आवश्यकता नहीं

चंद्रशेखर साहू, कृषि, पशुपालन, मछली पालन और श्रम मंत्री, छत्तीसगढ़ सरकार

वर्ष 2007 में केंद्रीय सरकार को प्रस्तुत राष्ट्रीय किसान कमिशन की रिपोर्ट में संसद में इस पर एक बार भी विचार विमर्श नहीं हुआ। इस रिपोर्ट से बहुत से लोगों को आशा थी कि यदि भारतीय संसद किसानों के लिए कुछ करना चाहती है और भारतीय अर्थव्यवस्था में उनके योगदान की सराहना करती है तो उन्हें इस रिपोर्ट पर पुनः विचार करना चाहिए। किसानों के कमीशन की एक महत्वपूर्ण सिफारिश कृषि को सहकारी सूची में शामिल करना था। अभी तक यह केवल राज्य का विषय था किंतु सभी प्रकार की कृषि से संबंधित आर्थिक सहायता, योजनाएं और कार्यक्रम केंद्रीय सरकार द्वारा ही निर्धारित होते हैं। किंतु इसे सहकारी सूची में शामिल करने संबंधी एक बार भी वार्तालाप नहीं हुआ।

छत्तीसगढ़ वास्तव में एक मोनोक्राप क्षेत्र है जो प्रमुख रूप से चावल का उत्पादन करता है। किसी ने कहा है कि धान और निर्धनता साथ–साथ चलते हैं किंतु यदि यह सच होता तो छत्तीसगढ़ सदैव ही निर्धन रहता। हरित क्रांति का धन्यवाद जिसने पिछले 12 वर्षों से धान उत्पादन में दस गुना वृद्धि दर्ज कराने में योगदान दिया।

छत्तीसगढ़ का जनजाति क्षेत्र बहुत से छोटे बाजरे का उत्पादन करता है, जैसे कोडो, कुतकी, सावा, रागी, रामतिल, कुल्थी और इस प्रकार के अन्य बाजरे। कोडो एक ऐसी फसल है जो किसी भी वातावरण में 50 वर्ष से अधिक रखी जा सकती है। बंगाल अकाल के दौरान छत्तीसगढ़, आंध्र और ओडिशा के जनजाति क्षेत्रों के अधिकतम लोग कोडो पर ही जीवित रह पाए थे। किंतु जनजाति लोगों को इन छोटे बाजरों के उत्पादन के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य नहीं मिलता है, न ही इसकी पुष्टीकरण के लिए कोई प्रयास किया गया। किसान गैर लाभकारी आहार फसलें उगाना नहीं चाहते किंतु अपनी आय बढ़ाने के लिए नकद फसलों का उत्पादन करना चाहते हैं।

छत्तीसगढ़ राज्य बनने के बाद बीजों को बदलने की दर में 4 प्रतिशत से बढ़कर 25 प्रतिशत हो गई है और किसानों के पास ट्रैक्टर भी 8000 से बढ़कर 42000 हो गए हैं। सरकार लोगों को एक रू. प्रति कि.ग्रा. की दर से चावल देती है किंतु किसानों को 12 रू. प्रति कि. का भुगतान करती है। प्रत्येक महीने की 7 तारीख को प्रत्येक अंतोदय अन्न योजना का परिवार एक रू. प्रति कि.ग्रा. की दर से 35 कि.ग्रा. चावल पाता है, और अन्य लोग 2 रू. प्रति कि.ग्रा. की दर से राज्य की उचित दर की दुकानों से चावल प्राप्त कर रहे हैं जो सहकारी संस्थाओं द्वारा चलाई जाती हैं। छत्तीसगढ़ की सहकारी संस्थाओं को धान की खरीद में 400 करोड़ रू. वार्षिक की हानि हो रही है।

खाद्य सुरक्षा : एक पुण्य पहल

श्री टी. नन्दकुमार – पूर्व केंद्रीय सचिव, कृषि एवं सहकारिता विभाग

दि इंटरनेशनल फूड पॉलिसी रिसर्च इंस्टिट्यूट की भूख रिपोर्ट में भूख को तीन पैमानों पर मापा गया है: बीएमआई के आधार पर कम वनज के लोग, पांच वर्ष से कम के कम वनज के बच्चे और बाल मृत्यु दर। कुपोषित लोगों की संख्या जानने के लिए अन्य मानदंड भी हैं जिनमें जल और स्वच्छता जैसे तत्व शामिल हैं। खाद्य सुरक्षा अधिनियम का प्रमुख उद्देश्य इस संख्या को बहुत कम करना है। पहला प्रश्न जो किसी को भी पूछना चाहिए कि क्या वर्तमान आकार में खाद्य सुरक्षा अधिनियम पर्याप्त है। यदि नहीं, तो क्या करने की आवश्यकता है ?

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए मुख्य मुद्दा पर्याप्त उत्पादन करना है। भारत गेहूँ और चावल का बड़ मात्रा में उत्पादन कर रहा है किंतु पौष्टिकता की सुरक्षा गंभीर है, जिसका अर्थ है कि भारत बड़ी मात्रा में दालों और तिलहनों का आयात काफी लागत पर कर रहा है। अन्य चिंता यह है कि लोगों के लिए कितना अनाज खरीदना चाहिए और कितना निजी व्यापारियों द्वारा खरीदा जाना चाहिए। इन दोनों में सहसंबंध है क्योंकि यदि सार्वजनिक खरीद अधिक की जाएगी तो न्यूनतम समर्थन मूल्य बढ़कर अधिकतम समर्थन मूल्य हो जाएगा। निजी क्षेत्र को भी बाजार में अच्छा स्पेस देना चाहिए ताकि किसानों को भी अच्छा मूल्य मिले। तीसरी चिंता असमान खरीद की है क्योंकि 90 प्रतिशत अनाज की खरीद पंजाब, हरियाणा, छत्तीसगढ़, पश्चिमी उत्तर–प्रदेश और आंध्र–प्रदेश में हो रही है जबकि अन्य राज्यों को छोड़ दिया जाता है। मैं नहीं समझता कि कृषि क्षेत्र के विकास के लिए यह सही मार्ग है।

अधिकतम किसान महसूस करते हैं कि न्यूनतम समर्थन मूल्य पर्याप्त नहीं हैं किंतु बाजार में सदैव प्रतिस्पर्धा रहती है और एक पहलू जो न्यूनतम समर्थन मूल्य निर्धारित करता है, वह है खरीद का लक्ष्य। खाद्य सुरक्षा अधिनियम के लिए लगभग 75 मि.टन की खरीद की आवश्यकता होगी। इससे दो बातें हो सकती हैं – या तो न्यूनतम समर्थन मूल्य इसके अनुसार हो जाएगा अथवा निजी व्यापारियों को हटाना होगा जिससे लंबे समय में कृषि मूल्यों पर प्रभाव पड़ेगा। अन्य प्रश्न यह है कि क्या देश को खाद्य सुरक्षा के लिए केवल अनाज पर ध्यान देना चाहिए, या इसे अन्य विकल्प पर विचार करना चाहिए, क्योंकि कुपोषण एक बड़ी समस्या बनता जा रहा है। यह देखने की आवश्यकता है कि क्या सार्वजनिक वितरण प्रणाली को बढ़ाया जाए ताकि अन्य उत्पादों को इसमें शामिल किया जाए और कुछ अलग हो पाए। जिस ढंग से अधिनियम बनाया गया है, इससे खाद्य आर्थिक सहायता पर अधिक भार पड़ेगा और कृषि में सार्वजनिक निवेश कम

हो सकता है। वह कृषि क्षेत्र के लिए बड़ी समस्या होगी क्योंकि लंबे समय में कृषि में सार्वजनिक निवेश खाद्य सुरक्षा के लिए अति महत्वपूर्ण होगा। अन्य समस्या उत्पादन मॉडल के बारे में है जिसका पालन किया जाएगा। वर्तमान में पंजाब जैसे कुछ राज्यों पर ही उत्पादन का अधिक भार है जिससे उनके प्राकृतिक संसाधनों पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है, जैसू भूजल और मिट्टी। इसके पश्चात भी वे उत्पादन जारी रखे हुए हैं। किंतु यह लंबे समय तक नहीं चलेगा, न ही भारत खाद्य सुरक्षा के लिए आयात पर निर्भर रह सकता है, क्योंकि कमी और उपलब्धता की समस्या है। उदाहरण के लिए विश्व में कुल व्यापार योग्य चावल 35 मि.टन है। इसमें से आधे चावल का मूल्य बहुत अधिक है और भारत इसकी खरीद नहीं कर सकता।

इससे भारत के हस्तक्षेप की कमजोरी का पता चलता है, जो अर्थिक सहायता के लिऐ अनाज पर आधारित है। इसके अतिरिक्त भूख की समस्या का सामना करते समय देश को पहले तीन आईएफपीआरआई इंडिकेटर्स पर ध्यान देना चाहिए। द्वितीय प्रत्येक राज्य को अपने आप भूख की समस्या का सामना करने की अनुमति दी जानी चाहिए, क्योंकि भारत जैसे देश में समान मॉडल एक अच्छा विकल्प नहीं है। तीसरे, यदि भारत में कृषि को बनाए रखना है तो विकेंद्रीकृत खरीद होनी चाहिए, चाहे गेहूँ, चावल हो या बाजरा। अगले 10 वर्षों में कोई नहीं चाहेगा कि पंजाब से बिहार चावल जा रहा है, जबकि बिहार स्वयं इसका उत्पादन कर सकता है। छत्तीसगढ़ राज्य ने स्थानीय खरीद और वितरण की पद्धति को मजबूत किया है और इस मॉडल को दोहराया जा सकता है। चौथे, हमें कृषि–पौष्टिकता के संबंध को भी देखना होगा। खाद्य सुरक्षा एटलस में मध्य–प्रदेश को सबसे बदतर नम्बर दिए गए हैं। यह वही राज्य है जहां पर कृषि में प्रति हेक्टेयर सकल मूल्य न्यूनतम है। इससे दिखाई देता है कि कृषि और न्यूट्रिशियन सुरक्षा की उत्पादकता और आय में सीधा संपर्क है।

खाद्य सुरक्षा और कृषि पर वार्तालाप करते समय हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि सभी कृषि की गतिविधियों पर नजर रखी जाए, जैसे पशुपालन और डेरी उद्योग को एक ही छाते के नीचे लाना न कि उन्हें विभिन्न विभागों में बांटना। किसानों के समर्थन के लिए विभिन्न मंत्रालयों में कई कार्यक्रम हैं। इन कार्यों को संपन्न करने में समस्या वहां आती है जब इन्हें जिला स्तर पर परिवर्तित करना होता है और ये कार्यक्रम संबंधित लाभार्थी तक समय पर नहीं पहुंच पाते, जब तक संबंधित बिंदु तक कार्यक्रम को परिवर्तित करने की इस प्रशासनिक समस्या से छुटकारा नहीं मिलता तो दी जाने वाली सुविधाओं का वैसा परिणाम नहीं आएगा जैसी देश आशा करता है। इसके लिए नीति में नवीनता लाने की आवश्यकता है।

अंत में, भारत तब तक कृषि में 4 प्रतिशत विकास दर प्राप्त नहीं कर सकता जब तक किसानों की आय नहीं बढ़ती। किसान जानता है कि वह नियमित आधार पर कृषि से लाभ कमाएगा और सभी नीतियां यही सोच के आधार पर बनाई जानी चाहिए।

बाजरे के विकल्प का प्रदर्शन :

श्री पी.वी. सथीश – निदेशक, डैकन डिवेलपमेंट सोसाइटी एंड नेशनल कन्वीनर, मिलैट्स नेटवर्क ऑफ इंडिया

वर्ष 1960 और 2007 के बीच खाद्यान्न की प्रति व्यक्ति उपलब्धता पर विचारः चावल की प्रति व्यक्ति उपलबधता में केवल 4.8 प्रतिशत की वृद्धि है। इसे देखते हुए 1960 का दशक महत्वपूर्ण था क्योंकि तब हरित क्रांति का शुभारंभ हुआ था और यह देखा गया कि इसके पश्चात बड़ी मात्रा में खाद्यान्न का उत्पादन हुआ। निःसंदेह गेहूँ में 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई किंतु भारत में अन्य अनाज को नुकसान हुआ जैसे बाजरा में 50 प्रतिशत की कमी भी हुई। इस प्रकार वास्तव में खाद्य उत्पादन में वृद्धि नहीं हुई है। इसके अतिरिक्त 40 प्रतिशत चने की हानि और 45 प्रतिशत दालों की हानि हुई है।

इस प्रकार इसमें कुछ दुविधा है कि जब कोई व्यक्ति खाद्य और पौष्टिकता सुरक्षा और इसके साथ–साथ हरित क्रांति से पहले की स्थितियों पर वार्तालाप करते हैं। वास्तव में भारत की अतीत की कृषि में सभी पौष्टिक और अनाज की आवश्यक गुणवत्ता का ध्यान रखा जाता था। आज हमारे पास विभिन्न योजनाएं हैं जैसे, बागवानी मिशन और दलहन मिशन। यदि केवल पहले की जैव विविधता को बनाए रखा जाता जो बाजरा उत्पादन के समय थी तो वर्तमान में हम इन कठिनाइयों में नहीं फंसते।

बाजरे को हाशिए पर रखने के बाद भी भारत अभी भी बाजरे का विश्व में सबसे बड़ा उपभोक्ता है। यह प्रत्येक वर्ष 9 मि.टन बाजरे का उपभोग करता है। नाइजीरिया और नाइजर देश इसके बाद आते हैं। जब यह कहा जाता है कि उप–सहारा के देश हमसे पौष्टिकता के मामले में बेहतर हैं, तो उनकी बाजरे की उपभोग की मात्रा के आधार पर ऐसा कहा जाता है। पिछले 20 वर्षों में भारत का 35 प्रतिशत बाजरा उत्पादक क्षेत्र कम हो गया है और 4 मि.हेक्टेयर भूमि बंजर हो चुकी है। यह देश की गेहूँ और चावल आधारित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के मुख्य कारणों में से एक है। आश्चर्यजनक है कि बाजरा कुछ लोगों का भोजन बन चुका है, जो स्वास्थ्य के प्रति जागरूक हैं, जबकि निर्धन लोग इससे वंचित हो रहे हैं।

अन्य चुनौती जिसका देश सामना कर रहा है, वह है जलवायु परिवर्तन। वर्ष 2050 तक लगभग 2 डिग्री तापमान बढ़ जाएगा। इससे भारतीय भूमि से गेहूँ लुप्त हो सकता है। चावल के साथ समस्या यह है कि जिस ढंग से यह उगाया जाता है, इसके लिए अधिक जल और रसायन चाहिए जो मिथाइन अर्थात् एक ग्रीन हाउस गैस उत्पादित करते हैं। भारत को चावल उगाना भी छोड़ना पड़ सकता है। परिवर्तित जलवायु को देखते हुए केवल बाजरा ही देश को बचा सकता है। जल की भी समस्या हैः एक एकड़ खेत में चावल उगाने के लिए 6 मि.ली. जल की आवश्यकता होती है, जो 300 परिवारों की एक सप्ताह के लिए उनकी जल की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है।

पुनः चावल का उत्पादन त्रुटिपूर्ण अर्थव्यवस्था पर आधारित है। यदि 10 पैसे प्रति लीटर जल का मूल्य मान लिया जाए तो इसकी बिक्री रू. 210 प्रति कि.ग्रा. किंतु अभी ऐसा नहीं हो रहा है। पारंपरिक बाजरे की खेती के लिए किसी सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती जैसा हरित क्रांति के बाद रसायन का उपयोग किया जा रहा है। बाजरे का उत्पादन वर्षा के जल पर निर्भर है और एक जैव विविध पद्धति होती है जिसके अंतर्गत अधिकतम बाजरा उगाया जाता है। एक श्रेष्ठ बाजरे के खेत से सरलता से दालों और तिलहनों की कमी को पूरा किया जा सकता है।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा में एक डेटिड कन्सेप्ट है। खाद्य सार्वभौमिकता पर ध्यान देने की आवश्यकता है जहां पर प्रत्येक किसान बिना किसी बाह्य उपकरणों के अपने खेत में अनाज उगा सकने के काबिल हो। यह भी एक अपराध है कि इस युग में भी बड़ी दूरी पर परिवहन से अनाज ले जाया जाता है जबकि प्रत्येक दिन ईंधन के मूल्य बढ़ रहे हैं। इस देश में सिंचाई योग्य भूमि में से 25 मि.हेक्टेयर बंजर भूमि भी पड़ी हुई है। यदि इस भूमि पर सिंचाई की जाए तो 40 मि.टन अतिरिक्त अनाज का उत्पादन किया जा सकता है। सरकार बाजरा उत्पादकों को प्रोत्साहित कर सकती है और उन्हें प्रोत्साहन राशि भी दे सकती है।